



भगवान् महावीर की साधना

[श्री आचाराङ्ग सूत्र का नम्र अध्ययन]



— सम्पादक —

जैनाचार्य पूज्य श्री जयमल्लजी महाराज
के सम्प्रदाय के स्वर्गीय श्रद्धेय
स्वामीनी श्री जोरावरमलजी
महाराज के सुशिष्य
प०रत्न मुनिश्री मिश्रीमलजी
महाराज (गधुम्बर)
न्याय-साहित्यतीर्थ



प्रकाशक —

श्री आत्म जागृति कार्यालय
व्यावर (राज०)

प्रथमावृत्ति } १० ० }	विष्णु सम्वत् २००७ वीर सम्वत् २४७७	{ मूल्य आने (=)
--------------------------	---------------------------------------	--------------------

मुद्रक —

श्री जगन्मसिंह के प्रबंध से
गुरुकुल प्रिंटिंग प्रेस,
व्यावरमें मुद्रित

समर्पण



जिनका बन्धुत्व पूर्ण सहयोग मेरे
विकास में सदा सहायक रहा है,
मेरी ही उन्नति को
जिन्होंने अपना लक्ष्य बना लिया है उन,
परमादरणीय गुरुभ्राता
मुनिश्री ब्रजलालजी महाराज के
कर-कमलों में

विनीत—

—मधुकर

दो शब्द



प्रस्तुत पुस्तक में भगवान् महावीर की साधना के जीवन का वर्णन है। भगवान् महावीर की साधना बड़ी कठोर थी। वह अपनी साधना के समय अतन सुदृढ़, मजग और सहनशील बने रह कि आप उनकी साधना के जीवन इतिवृत्त को पढ़कर पाठकों को महसा आश्चर्यचकित होना पडता है।

एक साधक अपनी साधना के समय कितना मजबूत बना रहता है उतना ही वह आगे जाकर दुनिया में एक महान् आराधना बनता है।

भगवान् महावीर की साधना के वर्णन को पढ़कर पाठकों को सोच सकते हैं कि वह एक कितना कठोर साधक था।

साधना अवस्था के समय भगवान् कैसे निस्वप्न रहें ? उनकी तपस्या कैसी रहा ? भयंकर उपसर्ग घोर परीक्षा और अतुल्य आपत्तियाँ के आगे पर भावे कैसे गम्भीर और अचल बन रहे ? यह सारा वर्णन प्राचाराङ्ग सूत्र के नौवें अध्याय में आता है। यहाँ इस पुस्तक में नौवें अध्याय के चारों ही अंशों का यथाक्रम संक्षेप रूप में है।

पाठकों से अनुरोध है कि एक बार इस पुस्तक का आश्रय अध्ययन करें और मेरे परिश्रम को सफल कर।

रमा बहन
म० २००६
तीवरी (मारवाड़) }

मुनि मधुकर जैन

प्रतावना



आचाराङ्ग सूत्र के तंत्रि अध्ययन में भगवान् महावीर की साधना का सक्षिप्त वर्णन है। क्षीत्ता लेन के याद कैरय-प्राप्ति तक उनका जीवन किम प्रकार का रहा, व कैस-कैसे विकट प्रदेशों म गए और वहाँ कैस कैस भयङ्कर कष्ट महे, हमका दिग्दर्शन इस प्रकरण में कराया गया है।

साढे बारह वर्ष के लम्बे समय म भगवान् ने केवल ३४६ दिन आहार का सेवन किया और यह भा दिन में एर बार। शेष दिन विविध प्रकार की अर तपस्याआ में बीत। लोगों ने उन्हें पोटा फानों म कील ठोक दा, उन पर शिमारी कुत्ते छोडे, किंतु भगवान् अपने माग से त्रिगलित न हुए। उठोंन मन म भी किसी के प्रति द्वेषन आने दिया और न अपनी पूव निश्चितचया में किसी प्रकार का परिवर्तन किया।

वर्द्धमान महावीर एर राजकुमार थे। सुरजा म पल थे। सभी प्रकार के भोग त्रिलाम उनके दृशारों पर नागत थे। तीस वर्ष की युवा अयस्था में, जब माधारण पुरुष, विषयभोगा में अंधे बने रहत हैं, महावीर ने कठोर व्रत अरपना लिया। उनके हृदय में जो आकाक्षा बाल्यकाल से ही बलवता हो रही थी वे उसकी पूर्ति के लिए रात्रप्रामाद का परित्याग कर एकांत वन की ओर चल पड़े। हमें यह समझना है, कि उनकी आकाक्षा क्या थी? उनकी साधना का लक्ष्य क्या था? व वहाँ पहुँचना चाहते थे?

महापुरुष अपने ही मृग दुःख से सतुष्ट नहीं रहा करते । या यों कहिए, उनका अपनपन का दायरा इतना विस्तृत होता है कि उसमें सभी प्राणी, ममस्त ममार समा जाता है । ये दुनिया के दुःख को अपना दुःख मममने हैं और दुनिया के सुख को अपना सुख । समार में दुखी प्राणियों को देखकर महावीर का हृदय विरल हो उठा । ये सोचने लगे कि दुख का मूल कारण क्या है और उसे कैसे दूर किया जा सकता है ?

महावीर ने देखा दुःख या सुख का आधार बाह्य वस्तुएँ नहीं हैं । उनका आधार आत्मा है । यदि सुन्दर युवती सुख का कारण होती तो रोगग्रिहण वृद्ध को भी उससे उतना ही सुख मिलना चाहिए तितना एक युवक को मिलता है । यदि धन ही सुख का कारण होता तो रोगी अपना रोग दूर करने के लिए उसे क्यों खरचता ? पुत्र, मित्र, धन सम्पत्ति आदि सभी के लिए यही यात है । सुख या दुःख वस्तुओं पर निर्भर नहीं है किन्तु हमारे मनो भावा पर निर्भर है । जिस व्यक्ति को हम अपना मित्र मानते हैं उसके मिलने पर सुख होता है । हमारे ही दिन किसी कारण से यदि उसके साथ लड़ाई हो जाती है तो यह हमारी आँगों को नहीं सुहाता । भूख लगने पर भोजन बढ़ा रुचिकर मालूम पड़ता है किन्तु पेट भर जाने पर वही येस्वाद हो जाता है । यह सब मन के ही खेल हैं ।

हमारा उद्यान पतन, उन्नति अधनति, विजय पराजय सभी कुछ इसी पर निर्भर हैं । माग म चनते हुए यदि सामने पड़ाई आ जाय तो यह हट नहीं सकता । यह तो पर्टी रहेगा । किन्तु यहाँ हार मानकर वापिस लौट आना या उस लाघने के लिए कदम आगे बढ़ाते जाना हमारे हाथ की बात है । उस समय हार स्वी

कार करने या न करने में हम स्वतंत्र हैं। हमारी विनय या पराजय इसी मादता पर निर्भर है। पर्यन्त उसमें कोई महत्व नहीं रहता।

यह मंत्र सोचकर भगवान् इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि मनुष्य की सुख तभी मिल सकती है जब वह परिस्थितियों के सामने भुङ्गना छोड़ दे।

किन्तु कहना चितना सरल होता है उतना करना नहीं। उपदेश देना मामूली बात है किन्तु उसी सिद्धान्त को जीवन में उतारने के लिए महती साधना चाहिए। भगवान् महावीर का यह निश्चय था कि स्वयं प्रयोग किए बिना किसी बात का उपदेश देना स्वतरे से खाली नहीं है। उपर्युक्त सिद्धान्त को प्रयोग में लाने के लिए वे भिनुक बन गए। अपने जीवन को ही उन्होंने प्रयोग शाला बनाया।

सब से पहले उन्होंने शत्रुता पर विनय प्राप्त की। वे हिंसक प्राणियों से भरे जङ्गल में ध्यान लगाकर खड़े हो जाते। सिंह, व्याघ्र आदि आत, उन पर गुराते किन्तु वे अपने मन में किसी प्रकार के द्वेष या भय की भावना न आन देते। वे उन्हें अपना मित्र मानकर प्रेम का प्रसार करते। परिणामस्वरूप भयङ्कर पशु अपने आप चल जात। इसी प्रकार वे क्रूर एवं निर्दय मनुष्यों की बस्ती में पहुँचते। वे लोग भगवान् को मारते पीटते तथा भयङ्कर यातनाएँ देत। किन्तु भगवान् शांत खड़े रहते। मन में भी किसी प्रकार का द्वेष न आन देत। मारने वाले आश्चर्य में पड़ जात। वैसा विचित्र पुरुष है। मार न्या रहा है किन्तु बचने तक की कोशिश नहीं करता। सुख पर भी कोई उदासी नहीं आने देता। यह तो पहले की तरह ही शान्त और प्रमत्त खड़ा है। उनका हृदय, धदल जाता। वे बिना किसी उपदेश के भगवान्

के चरणों में लोट पाता । इस प्रकार भगवान् ने उक्त प्रयोग द्वारा यह सिद्ध कर दिया कि शत्रु पर विजय प्राप्त करने के लिए असम प्रयत्न करना चाहिए । मोक्ष, ज्ञान गन्ताव्व होता है, मोक्ष से नहीं । मान, विजय से विगलित होता है, मान से नहीं । माया, सरलता से नष्ट होती है, माया से नहीं । लाभ, अदारता से दूर जाता है, लोभ से नहीं ।

आत्मा जब तक मोह में लीन रहता है तभी तक दुखी रहता है । निर्माही को कभी दुःख नहीं होता । मोह पर विजय प्राप्त करना भगवान् महावीर का दूसरा प्रयोग था ।

घन सम्पत्ति तथा राजवैभवं से तो वे वचन में ही विरक्त थे । माता, पिता, भाइ, बहिन, पत्नी, मन्तान आदि के मोह पर भी उन्होंने विजय प्राप्त की और सब को छोड़कर चल दिए । किन्तु अभी तब एक वस्तु शेष थी । उमर मोह पर विजय प्राप्त करना सरल काम न था । यह वस्तु थी अपना शरीर । शरीर भी आत्मा में भिन्न है, पराया है । इस भी छोड़ना ही पड़ता है । किन्तु छोड़ना पड़ना दूसरी बात है और स्वयं उमर छोड़ देना दूसरी बात है । भगवान् उसे स्वयं छोड़ देना चाहते थे । इसका अर्थ यह नहीं है कि वे स्वयं शरीर का नाश कर डालना चाहते थे । यह तो आत्महत्या है । वे चाहते थे शरीर के प्रति मोह न रहे । वह आत्मरक्षण का साधन मात्र रहे किन्तु उसके लिए आत्महित की ओर उपज्ञान हो । शारीरिक वस्तु आत्मा को विचलित न कर सकें ।

किसी मूल्यवान् पदार्थ के नष्ट हो जाने पर उसके स्वामी को दुःख होता है । किन्तु दूसरे लोग तटस्थ रहते रहते हैं । स्वामी के मन में दुःख इसीलिए होता है क्योंकि उस पदार्थ पर उसका ममत्व है । यदि वह ममत्व त्याग दे तो वह भी दूसरे लोगों की तरह

निर्लिप्त और निर्विकार रहकर उस पदार्थ के विनाश को देख सकता है। पुत्र मर जाता है तो मा पड़ाइ खाकर गिर पड़ती है, पिता मिमक सिमक कर आँसू बहाता है, बंधु सहानुभूति दिखाते हैं और अपरिचित निर्विकार खड़े खड़े देखत रहत हैं। इस तारतम्य का कारण मोह का तारतम्य है। जितना मोह अधिक है उतना ही दुःख अधिक होगा।

शरीर के लिए भी यही बात है। व्यक्ति शरीर में जितना मोह रहेगा, चोट आदि लगान पर उतना ही अधिक कष्ट होगा।

भगवान् महावीर स्वामी मोह पर पूर्ण विजय प्राप्त करना चाहते थे। इसलिए उन्होंने शरीर से भी ममत्व हटा लिया। उसे दुःखों की भट्टी में स्वयं भोंक दिया। फिर भी वे निर्लिप्त रहे। मन में किसी प्रकार का विकार न आने दिया। इस प्रकार वे अपने दूसरे प्रयोग में भी सफल हुए।

यहाँ प्रश्न हो सकता है—क्या शरीर सुग्ना देने के लिए है? क्या प्राकृति में सौंदर्य नष्ट कर देने के लिए हाता है? क्या यह प्रकृति का विरोध नहीं है? क्या प्रकृति का विरोध करके कोई व्यक्ति विकास कर सकता है? भगवान् महावीर ने इन प्रश्नों पर गम्भीर विचार किया था। उपर्युक्त प्रश्न उन्हीं की ओर से हो सकते हैं जो जड़ वस्तुओं से भिन्न आत्मा का अस्तित्व नहीं मानते। महावीर के सिद्धान्त में जड़ और चेतन भिन्न-२ वस्तुएँ हैं। दोनों विरोधी तत्त्व हैं। चेतन जड़ से बँटा हुआ है। उसे प्रकट करना मानव जीवन का चरम लक्ष्य है। जड़ कितना ही सुन्दर हो, हेय है। हम परदे के पीछे बैठे हुए अपने प्रियजन से मिलना चाहते हैं। उसे करने के लिए हृदय व्याकुल हो रहा है। फिर परदा कितना ही सुन्दर हो हम उसे हटा देना चाहते हैं, उसे फाड़ डालना चाहते हैं। आत्मतत्त्व पर शरीर एक परदा है। हम उससे जितना मोह करेंगे आत्मतत्त्व से उतना ही दूर रहेंगे।

एक व्यक्ति अपना रोग दूर करने के लिए पैसा पानी की तरह बहा रहा है। एक कजूम खाता है और उसे कहता है, क्या परिश्रम से अर्जित यह धन वा ही बहा देने के लिए है ? रोगी उत्तर देगा—धन का रक्षा के लिए मैं अपने शरीर को नष्ट नहीं कर सकता। वन बहा तक उपयोगी है जहाँ तक उससे मेरे सुख की वृद्धि हो। दुःख भोग कर पसा बचाना मूर्खता है। रोगी के लिए जो स्थान धन का है, आत्मार्थी के लिए वही स्थान शरीर का है। आत्मार्थी आत्मा का परमश्रेयम् प्राप्त करना चाहता है। यदि शरीर का मोह रमम बाधा डालता है तो यह उसका दमन करने में मकोच न्ना करेगा। उसके लिए शरीर वहाँ तक उपयोगी है जहाँ तक उससे आत्महित साधन होता है। शारीरिक या भौतिक सौन्दर्य उसके लिए कोई महत्त्व नहीं रखता। आत्मनस्य की गये पणा म भौतिक सम्पत्तियों का कोई मूल्य नहीं है।

भगवान् महावीर अग्रिहारी थे। उनके समय म, तप म, चर्या में, निश्चय म तथा साधना में सभी में उपलब्धि थी। इसके विपरीत बुद्ध मध्यममार्गी थे। उठाने उपमार्ग छोड़कर मध्यम मार्ग अपना लिया। इस विषय में भी दो शब्द लिखना अप्रासंगिक न होगा।

सासार में लोग भिन्न भिन्न रुचि वाले हैं। कुछ ऐसे होते हैं जो कठिनाइयों नहीं सह सकते। जो कष्टों से घबरा उठते हैं। उनके लिए मध्यममार्ग ही उचित है। उपमार्ग अपना कर कष्ट आने पर यदि मन में ग्लानि उत्पन्न हो जाती है, मनुष्य अपने को दशा हुआ—सा समझता है, या लिए हुए घत के लिए पड़ता है तो उससे आत्मा निर्मल तथा निरुत्साह बन जाती है। इसलिए अपनी शक्ति तथा उत्साह व अनुसार ही घत लेना चाहिए। ऐसे व्यक्ति के लिए उपमार्ग उपयुक्त नहीं होता।

किंतु बुद्ध लोग ऐसे भी हैं जिन्हें कष्ट सहने में आनंद आता है। जिन्हें कठिनाइयाँ दुगुना प्रोत्साहित करती हैं। जिन्हें दुःख अधिक दृढ़ बना देने हैं। प्रहार पितना प्रबल होगा वे उतने ही कठोर चट्टान बनते जायेंगे। महावीर उन्हें महापुरुषों में प्रमुख स्थान रखते थे। उन्हें कष्ट सकुल-जीवन व्यतीत करने के लिए किसी ने बाध्य नहीं किया था। उस मार्ग को उन्होंने स्वयं जान कर अपनाया था। वे आदर्शों को आदर्श मात्र न रहने देना चाहते थे। वे उन्हें व्यावहारिक सत्य बना देना चाहते थे। यही तो जैनदर्शन की विशेषता है। यहाँ जीवन के उच्चतम आदर्श ध्रुव तारा नहीं हैं जिसे देखकर आगे बढ़ा जाता है किंतु यहाँ पहुँचा नहीं जाता। यहाँ तो प्रत्येक आदर्श व्यावहारिक सत्य है। जिन महापुरुषों ने उसे जीवन में उतारकर बताया है वे ही जैन कर्णधार हुए हैं। महावीर पूरा अहिंसक होने पर भी अपने प्रति कठोर थे।

बुद्ध के जीवन में मधुरता है, उदारता है, नेप तथा दुर्बलताओं के लिए सहनशीलता है। महावीर इन बातों को शिथिलता समझते हैं। उनमें अपने शरीर के प्रति भी कोई करुणा नहीं है। दुर्बलताओं के लिए कोई स्थान नहीं है। वे स्वयं पितने कठोर हैं, उनकी मध व्ययस्था भी उतनी ही कठोर है।

अहिंसावाद में जैनदर्शन दूसरे सभी धर्मों से आगे बढ़ा हुआ है। चलते फिरते प्राणियों का तो कहना ही क्या। यहाँ पृथ्वी, अग्नि, जल, वायु तथा धनस्पति के चीरों की भी हिंसा के त्याग का उपदेश दिया गया है। यहाँ हिंसा का अर्थ समझ लेना आवश्यक है।

हिंसा का अर्थ सिर्फ़ जिंभी की मारना ही नहीं है। मारना तो द्रव्यहिंसा है, जो मानहिंसा का बाह्यरूप है। जैन शास्त्रों में

भगवान् महावीर की साधना

विषयानुक्रम



उद्देशक	विषय	पृष्ठांक
प्रथम	विहार	१-१३
द्वितीय	वसति	१४-२३
तृतीय	परिपह-सहन	२४-३३
चतुर्थ	तपश्चर्या	३४-४१



भगवान् महावीर की साधना

[श्री आचाराङ्ग-सूत्र के प्रथम श्रुतस्कन्ध का नवम अध्याय

अकारादि अनुक्रमणिका

मूल गाथा	गाथाऽङ्क	उ-शरु
अद्वैतिय	१७	१
अङ्गारा	१५	४
अद्दु कुचरा	८	
अद्दु धावरा	१४	१
अद्दु पोरिसि	५	१
अद्दुवा	११	४
अद्दु वायसा	१०	८
अपि साहिण		४
अप्ये जरा	४	१
अप्य तिरिय	१	१
अवि गदाइ	१४	४
अवि साहिण	११	१
अवि सुइय	१३	४
अध्मतरमि	१२	
अइ दु-चर		३
अहा रुड	१८	१
अहामुय	१	१
अहियासए	१	
अलगतारे	३	७
आयावद थ	४	४
आधेवण	५	

०६ लोड्याद	३	०
उच्चालइय	१०	३
उयसकमत	६	३
एएई	४	२
एयाइ	१३	१
एयाणि निधि	५	४
एलिङ्खए	५	१
एवं रि	६	३
एस विही०	२३	१
एम विही०	१६	
एस विहा०	१४	३
एस विही०	१७	४
ओमोयरिय	१	४
गणिए	१०	३
गभ पविमे	६	४
चत्तारि	३	१
चरियामणाइ	१	०
छट्टेण०	७	४
चे के इमे	७	१
जसि प्येग	१३	०
गट्ठा ण	८	४
णि वि	५	२
णो चे विमेण	०	१
णो मुगर०	८	१
णो सेवइ	१६	१

तण फासे	१	३
तौमे भगव	१५	७
टुविह	१	१
नागो	८	३
निहाय	७	३
पुन्वि	१	१
वग्सा	६	१
भग्म च	१५	६
मावगण	१०	१
मसप्रणि	११	३
लाटु	३	३
रिति ह्य	१	४
रिए	३	४
स जणहि	११	२
मणोहि	६	१
मणोहि	७	०
गुम्मव	१६	४
मिसिरोसि	०	१
सुरो सगाम	१३	३
सधादिथा	१४	
महुग्ममाण	६	२
सक्चुर	४	१
ससोत्रण च		४
हय-पुन्वी	१०	३



भगवान् महावीर की साधना

श्रीमान् जुगराजजी माह्वि पारख



आप तीवरी (मारवाड) के एक बहुत अच्छे टा
मनभक् प्रतिष्ठित व्यक्ति हैं। डूँडागचा (खानदेश) म
आपकी बहुत अच्छी पेदी बल रही है। आपने
इस पुस्तक क प्रकाशन क निमित्त अपनी स्व
गीया माताजी की पुण्य-स्मृति म २००)
रूपये भट किए हैं। एतद्ध धन्यवाद।

श्रमण भगवान् महावीर के जीवन की — सहिता —

जन्म—वि म० ५२० पूव, चत्र शुक्ल त्रयादशी क राठ क समय ।
दीर्घा—अपन जीवन के ३० वर्ष पूर हो ज्ञान के धाद, मार्गशीर्ष
कृष्ण दशमी के दिन ।

तपस्या—

- (१) एक—पाण्ड्यामिक उपवास
- (२) एक—पचत्विम—यू पाण्ड्यामिक उपवास
- (३) नौ—चार मास क उपवास
- (४) छ—गई मास के उपवास
- (५) दो—हड़ मास क उपवास
- (६) बारह—एक मास क उपवास
- (७) बहतर—पन्ह दिन क उपवास
- (८) एक सयतोभद्र प्रतिमा (१० दिन की)
- (९) एक महाभद्र प्रतिमा (चार दिन की)
- (१०) बारह—अष्टम भक्त (तले)
- (११) द्वा सो उतताम पष्ठ भक्त (बल)
- (१२) एक—भद्रा प्रतिमा (दो दिन की)

कुल तपस्या १० वर्ष ८ मास १५ दिन ।

पारणा—३५०,

कैवल्य प्राप्ति—वैशाख शुक्ल दशमा

त्रैमासे की तालिका—

(१) अस्थिकप्राम	(२०) राजगृह
(२) नालडा	(२३) वाण्डियप्राम
(३) चंपा	(२४) राजगृह
(४) प्रष्ट चपा	(२५) मिथिला
(५) महिलपुर	(२६) मिथिला
(६) भद्रिकापुर	(२७) मिथिला
(७) आलभिका	(२८) वाण्डियप्राम
(८) राजगृह	(२९) राजगृह
(९) अनाम प्रदेश क पगल में	(३०) वाण्डियप्राम
(१०) आयस्ता	(३१) वैशाली
(११) वैशाली	(३२) वैशाली
(१२) चपा	(३३) राजगृह
(१३) राजगृह	(३४) नालडा
(१४) वैशाली	(३५) वैशाली
(१५) वाण्डियप्राम	(३६) मिथिला
(१६) राजगृह	(३७) राजगृह
(१७) वाण्डियप्राम	(८) नालडा
(१८) राजगृह	(३९) मिथिला
(१९) राजगृह	(४०) मिथिला
(२०) वैशाली	(४१) राजगृह
(२१) वाण्डियप्राम	(४२) पावापुरी

नियंत्रण—अपन पावन क ३० ठे वर्ष स बालिक अमा
बारा की रान में ।

● एमोल्युण तम्म सनशस्य भगवओ महावीरम्स ●

भगवान्

॥ महावीर की साधना ॥

[आचाराग सूत्र के नीवें अध्धन के आधार पर]



पढमो उद्देसो



—[विहार]—

सिसिरंसि अद्द-पडिन्ने

त घोसिअ वत्थमणगारे ।

पसारित्तु वाह् परक्कमे

णो अपलनियाण खघमि ।



(१)

अहा-मुय धइस्सामि,
 जहा से समणे भगव उट्ठाए ।
 सखाण तसि हेमन्ते,
 अहुणा पच्चइए रीइत्था ॥

(२)

णो चेविमेण वत्थेण,
 पिहिस्सामि तसि हेमते ।
 से पारए आवरुहाए,
 एय सु अणु धम्मिय वस्स ॥

(३)

चत्तारि साहिए मासे,
 धहने पाण-जाइया थागम्म ।
 अभिरुज्ज ऱाप विहरिंमु,
 आरसिया ण तत्थ हिंसिमु ॥

मार्गशीर्ष कृष्ण दशमी को तीसरे प्रहर के समय सिद्धार्थ नन्दन, त्रिशला के आत्मन, नन्दिवर्धन के अनुज राजकुमार वर्द्धमान ने क्षत्रिय कुण्ड के बाहर ग्यान में दीक्षा अङ्गीकार की। क्षत्रिय-कुण्ड, विदेह की राजधानी वैशाली का उपनगर था। मुनिव्रत अङ्गीकार कर भगवान् ने कमरी ग्राम की ओर विहार किया। उनको इस घटना का निर्देश करत हुए सुधर्मास्वामी अपने प्रिय शिष्य जम्बू स्वामी से कह रहे हैं —

(१)

सुधर्मा स्वामी ने कहा—जम्बू ।

भगवान् महावीर की मयम साधना का वृत्तांत मैंने जैसा सुना है वैसा ही तुमसे कहता हूँ। उन्होंने हेमन्त ऋतु में दीक्षा ग्रहण की और विहार कर दिया।

(२)

भगवान् के मन में यह नहीं था कि शीतकाल में यह ऋषभ श्रौतने के काम आएगा। परीपह तथा उपसर्गा का स्वागत करने के लिए वे अपने जीवन को लगा देना चाहते थे। उनके लिए वस्त्र धारण करने परम्परा का पालन था।

(३)

चार महीने से भी अधिक समय तक वस्त्र बहुत सुगन्ध देता रहा। उससे आकृष्ट होकर बहुत से भोरि आदि प्राणी भगवान् के चारों ओर मड़राया करते थे। वे भगवान् के शरीर पर बैठ जाते, क्रोध में आकर काटते और उन्हें विविध प्रकार के कष्ट देते।

† जैन परम्परा के अनुसार जब तीर्थङ्कर गीला लेते हैं तो इन्द्र उन्हें एक वस्त्र समर्पित करता है जिसे 'देवदूष्य' कहते हैं। यद्यपि तीर्थङ्कर वस्त्ररहित चिन्तनी साधु हो जाते हैं फिर भी इन्द्र वस्त्र को कंधे पर रखकर चला जाता है। वह वस्त्र अपने आप जब तक पना रहता है तीर्थङ्कर उसे नहीं हटाने। जब कहीं गिर जाता है तो उसे वे उठाने भी नहीं।

(४)

मवच्छर साहिय मास,
 ज न रिक्कासि वत्थग भगव ।
 अचेलेण तओ चाई,
 त वोसिरिज्ज वत्थमणगारे ॥

(५)

अदु * पोरिणि तिरिय भित्ति,
 चक्खु-मामज्ज अतसो भाअइ ।
 अह चक्खु-भीया महिया ते,
 हता हता बहवे कदिंसु ॥

(६)

मयणेहिं वित्तिमिस्मेहि,
 इत्थिओ तत्थ से परिन्नाया ।
 X सागारिय ण सेनेइ य,
 से सय पनेसिया भाइ ॥

(७)

जे पे इमे अगारत्था,
 मिस्सीभाय पहाय मे भाइ ।
 पुट्ठोवि नाभि-भामिंसु,
 गच्छइ नाइवत्तइ अज्ज ॥

(४)

तेरह मास तक भगवान् न उम घन्न को नहीं छोड़ा । इसके बाद उसको छोड़कर अचेलक हो गय ।

(५)

चलते समय भगवान् अपनी दृष्टि मामने की ओर सादे तीन हाथ मार्ग पर जमाए रखते थे । वे बड़े सावधान होकर चलते थे । उम समय उन्हे नेमर बालक डर जाते । अत वे भगवान् पर पथर आदि फेंकन और चिल्लाते ।

(६)

कभी कभी भगवान् को गृहस्था तथा अन्य तार्थिकों से मिश्रित धर्मतिर्या में रहना पड़ता था । वहाँ उनस स्त्रियों मोग के लिए प्रार्थना करती था । परन्तु भगवान् स्त्रियों को समय में दाभा पहुँचाने वाली सममत्र ये मलिन वे कभी ब्रह्मचर्य में विचरित नहीं हुए । ऐसे समयमें भी वे आत्म चिन्तन में ही लीन रहते थे ।

(७)

गृहस्थों क ममर्ग से दूर रहकर भगवान् म्म ध्यान-मन रहते थे । पूछने पर भी न बोलत थे । अपने ही पद पर चन्ते थे । सरल स्वभावी भगवान् सदा समय मार्ग पर अटकर रहते थे ।

(८)

यो सुगर-मेय-मेगेसिं,
 नामि-भासेइ अमि-वायमाणे ।
 हय पुत्रे तत्थ दडेहिं,
 लूसिय-पुब्बे अप्प-पुण्णेहिं ॥

(९)

फरुसाइ दुतितिक्खाइ,
 अइ अच मुणी परक्कमाणे ।
 आपाय-नइ-गीयाइ,
 दड-जुद्धाईं मुट्ठि-जुद्धाइ ॥

(१०)

गणिए मिहु-कहासु,
 समयम्मि नाय-मुए विसोणे अदक्खु ।
 एयाइ से उरालाइ,
 गच्छइ नायपुत्ते *असरणाए ॥

(११)

अवि साहिए दुवे वासे,
 सीओदे अभुच्चा निक्खते ।
 एगत्त-गए Xपिहियच्चे,
 से अहिन्नाय-दसणे सते ॥

(८)

भगवान् ने जिस साधना को अपनाया था वह सबके लिए सुकर नहीं थी। जो उन्हें नमस्कार करता वे उससे भी न बोलते। अल्पपुण्य व्यक्तियों ने कई बार उन्हें दबों से पीटा और अनेक प्रकार से तङ्ग किया।

(९)

अत्यन्त कठोर और असह्य परीपर्हा से भी वे कभी नहीं घबराये। अपने सयम मार्ग में दृढ़ रह। नाच, गान तथा कथा कहानियों में उन्हें कोई रचि न थी। दण्ड-युद्ध तथा मुष्टि-युद्ध देखने में भी कोई उत्सुकता न थी।

(१०)

दम्पतियों की गुप्त बातें सुनने का अवसर आने पर भी भगवान् सदा राग रहित रहे। उन्होंने मध्यस्थ भाव को कभी नहीं छोड़ा। किसी भी प्रकार के अनुकूल तथा प्रतिकूल परीपद् उन्हें सयम से विचलित न कर सके। वे सदा अपने जीवन को सयम-मार्ग में ही लगाते रहे।

(११)

भगवान् को गृहस्थाश्रम में भी सयमी जीवन बिताते हुए दो वर्ष से अधिक समय हो गया था। उन दिनों उन्होंने कथा (सचित्त) पानी नहीं पिया। हृदय में समस्त जीवों के प्रति एकत्व की भावना जागृत की। कपायाग्नि को शान्त किया। आत्मा को सम्यक्त्व की भावना से भावित किया तथा इन्द्रियों को अत्यन्त शान्त बना लिया।

(१२, १३)

पुद्वि च आउमाय च,
 तेउमाय च वाउमाय च ।
 पणगाइ बीय-हरियाद,
 तमकाय च सउमो नचा ॥
 "एयाई सति" पडिलेह,
 'चित्तमताइ' से अभिन्नाय ।
 परिवजिय विहरित्या,
 इइ ससाय से महानीरे ॥

(१४)

अदु * धाररा तसत्ताए,
 × तमा य थावर-त्ताए ।
 अदुवा सच्चजोणिया सत्ता,
 कम्मुणा कप्पिया पुत्तो चाला ॥

(१५)

भगन च एव-भवेमी,
 सोनहिए हु लुप्पइ चाले ।
 कम्म च सच्चसो नचा,
 त पडियाडक्खे पाउग भगन ॥

* स्थावर — पृथ्वी आदि ऐनेन्द्रिय जीव जो स्वयं चल फिर नहीं सकते ।

× प्रस — स्वयं चलने फिरने का मागर्थ रखने वाले इन्द्रिय आदि जीव ।

(१०, १३)

भगवान् महावीर न पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु शैवाल, यौन आदि सभी घनस्पतियों तथा चलते फिरते सभी प्राणियों में आत्मा समझी। इसलिए ये उनकी हिंसा से बचने हुए विचरते थे।

(१४)

भगवान् महावीर ने अपने ज्ञान में जान लिया कि ससार के सभी जीव अपने अपने कर्मानुसार स्थावर संश्रम और श्रम न स्थावर धन पाते हैं। सभी जीव अपने अपने कर्मों के अनुसार भिन्न भिन्न योनियों में परिभ्रमण करते रहते हैं।

(१५)

भगवान् ने यह जाना कि अज्ञान जीव द्रव्य और भावरूप उपाधियों के कारण कर्मों के बंधन में फँसे रहते हैं। इसलिए महा कर्मों को त्यागकर श्रम तथा उनका हनुमूत उपाधि का त्याग कर दिया।

(१६)

दुविह समेश मेहारी,
 मिरिय-ममयाय ऽगेलिम नाणी ।
 =आयाण-सोय-~~म~~डयाय मोय,
 जोग च मव्वमो गुया ॥

(१७)

* अइवत्तिर्य —अणाउट्टि,
 सय-मचेसि अररणयाए ।
 जस्मित्थिओ परिचाया,
 सव्वकम्मवहाउ से अदक्खु ॥

(१८)

अहाक्ख न मे सेने,
 सव्वसो कम्म-अदक्खु ।
 ज म्मिचि पावग भगव,
 त अकुव्व +मियड भुञ्जित्था ॥

= (आयाण) आत्मान छोट —इन्द्रियों की दुष्ट प्रवृत्ति से होने वाला कर्म प्रवाह ।

* अतिगत छोट —द्विसाधन्य कर्म प्रवाह ।

* अतिपातिका —निर्दोष ।

—अनाउट्टि —अहिंसा ।

+ किरु —प्राप्तक ।

(१६)

(इन्द्रियों के विषयभोग तथा हिंसादि क्रूर कार्यों को कर्म बन्धन का कारण समझकर भगवान् ने इन दोनों से भिन्न सयम मार्ग का उपदेश दिया ।) ✓

(१७)

भगवान् ने स्वयं शुद्ध अहिंसा का पालन किया और दूसरे साधकों के लिए भी हिंसा से बचे रहने का उपदेश दिया ।

(भगवान् महावीर द्वारा उपदिष्ट इस मार्ग को वही व्यक्ति समझ सकता है जो विषयभोगों का वस्तु बन बाली स्त्रियों को पापों का मूल समझता है ।) ✓

(१८)

कर्मबंध का कारण जानकर भगवान् कमी † आधाकम आहार का सेवन नहीं किया । किन्तु अन्न का पाप न करने हुए भगवान् ने मदा निर्दोष आहार का सेवन किया ।

† आधाकम (अध्यात्म) — अर्थात् अन्न का आधा सेवन करना ।

(१६)

यो सेरड य परवत्थ,
 पर-पाए पि से न भुञ्जिथा ।
 परित्रजियाण थो-माण,
 गच्छ १ मसडि अमरणाए ॥

(२०)

मायएणे अमण-पाणम्म, नाणुगिद्धे रमेणु अपडिन्ने ।
 अत्थिपि नो पमज्जिजा, थोपि च ऋडूयण मुणी गाय ॥

(२१)

अप्प तिरिय पेहाए,
 अप्प पिट्ठओ पेहाए ।
 अप्प बुड्ढअपडि-माणी,
 पथ-पेही चरे जयमाणे ॥

(२२)

सिमिरसि अद्ध-पडिवन्ने, त थोसिज वत्थ-मणगारे ।
 पमरित्तु धाट्ट परक्कमे, नो अचलत्रियाण सधमि ॥

(२३)

एस त्रिही अणुक्को,
 माहणण मईमया ।
 बहुसो अपडिन्नेण,
 भगवया एव रीयति ॥

(१६)

भगवान् न न किसी दूसरे का घस्र काम में लिया और न कभी दूसरे के पात्र में भोजन ही किया। मानापमान की परवाह न करके व अतीन मन से भिक्षा के लिए भोजनालया में जाते थे।

(२०)

भगवान् भोजन और पान की मात्रा का ध्यान रखते थे। न रमों में आमक्त होते थे और न वस्तु विशेष की आकांक्षा ही करते थे। उन्होंने तिनका आदि पडन पर न कभी श्रद्धा को समझा और न कभी अज्ञा को ही रुजलाया।

(२१)

चलन समय भगवान् न तो कभी इधर उधर देखते थे और न कभी पीछे। किसी क पूछने पर बहुत कम बोलते थे। मार्ग में ध्यान जमाय हुए यतनापूरक चले जाते थे।

(२२)

शीतकाल म घस्र छोड देने पर भी भगवान् सुली मुजाओं से चलते थे। हाथा को कभी धगलों में नहीं दबाते थे।

(२३)

मतिमान, आत्मनिष्ठ एष विषयो की लालसा से रहित भगवान् मन्वीर जिस मार्ग पर चले थे, सभी मुमुक्षु उसी मार्ग पर चलते हैं।



दुइयो उद्देशो



[वसति]



अहियासए सया समिए,
फासाइ विरुव-रुनाइ ।
अरइ रइ अभिभूय,
रीयइ माहणे अनहुबाई ॥

(१)

चरिया-मण्ड सिद्धाओ,
 ण्गइयाओ जाओ पुइयाओ ।
 आइख ताड मयणा—
 मण्ड जाड सेपिन्या से महानीरे ॥

(२)

* आनेसण- X ममा- —पवासु,
 + पणिय मालासु एगया वासो ।
 अदुवा = पलियठागेसु,
 † पलाल-पुञ्जेसु एगया वासो ॥

(३)

आगतारे आरामागारे,
 तह थ नगरे वा एगया वासो ।
 सुमाणे सुन्नगारे वा,
 रुम्पमूले व एगया वासो ॥

* शू यण्ड X पान्थशाला धर्मशाला — प्याऊ
 + हाट = कमस्थान—जहाँ लोहार थापि अपना काम करते हैं
 † पाल के बने हुए मच ।

(१)

शिष्य जम्बू ने अपने धर्माचार्य सुधर्मा स्वामी से पूछा—
मगधन् !

श्रमण भगवान् महावीर अपने तपस्वी जीवन में कहीं कहीं
धूम ? उहोंने कहीं निराम किया ? शयन आसन आदि के
विषय में उनकी क्या चर्चा रही ? तनिक इस विषय से मुझे
परिचित कराने की कृपा कीनिये ।

(२)

सुधर्मा स्वामी ने उत्तर दिया, प्रिय जम्बू !

भगवान् महावीर विचरते हुए कभी तो शून्यगृहों में ठहर
जाते थे और कभी पाथशालाओं में, कभी प्रपाओं में, कभी
पथशालाओं में, कभी कर्मस्थानों में तथा कभी घास के बने हुए
मंचों के नीचे निवास करते थे ।

(३)

वे कभी सरायों में, कभी उद्यान गृहों में, कभी नगर में,
कभी श्मशान में, कभी सूने घर में तथा कभी वृक्ष के नीचे ही
छहर जाते थे ।

(४)

एएहिं मुणी सयणेहिं,
 समणे आमी पतेलसवामे ।
 राइ दिव पि जयमाणे,
 अण्णमत्ते समाहिए भाई ॥

(५)

णिइ पि खो पगामण,
 सेणइ भगव उट्टाए ।
 जग्गावइ य अण्णाण,
 ईसिं साइय अण्णडिन्ने ॥

(६)

सयुज्जमाणे पुणरनि,
 आसिसु भगव उट्टाए ।
 निक्खम्म एगया राओ,
 धहिं चकमिया सुहुत्ताग ॥

(७)

सयणेहिं तत्थुनसग्गा,
 भीमा आमी अणेगरूपा य ।
 ससपग्गा य जे पाणा,
 अट्टुना जे पण्णिसणो उचरति ॥

(८)

लगभग तरह वष तक भगवान् इस प्रकार के स्थानों में विचरते रहे। वे कैवल्य प्राप्ति के लिए दिनरात प्रयत्न करते रहे। उन्होंने कभी प्रमाद नहीं किया और व सदा समाधि तथा ध्यान में मग्न रहे।

(५)

सयमी जीवन स्वीकार करने के बाद भगवान् ने प्रायः निद्रा का सयन नहा किया। बहुत थोड़ा मोते हुए तथा आहार बिहार या शयन आदि के विषय में किसी प्रकार की लालसा न रखते हुए वे निरन्तर आत्मा को जगाते रहने थे।

(६)

(भगवान् निद्रा को प्रमाद तथा आलस्य का कारण मानते थे। इसलिए वे रात्रि में उठकर बैठ जाते। फिर भी यदि नींद आती तो ठण्डी रात में बाहर निकल जाते और थोड़ी देर घूमने रहते।)

(७)

भगवान् प्रायः निजन स्थानों में रहते थे, अतः उन्हें विविध प्रकार के उपसर्गों का सामना करना पड़ता था। सर्प, नवला आदि अनक विपैल जंतु तथा गिद्ध आदि पक्षी उनके आस पास घूमते रहते थे और उन्हें कष्ट देते थे।

(८)

अद्दु कुचरा उचरति,
गामरवरा य सच्चिहत्या य ।

अद्दु गामिया उचसगा,
इत्थी एगइया पुरिसा य ॥

(९, १०)

इह लोडयाइ परलोइयाइ, भीमाइ अणेगरूयाइ ।
अवि सुन्नि-दुन्नि-गधाइ, सदाइ अणेगरूयाइ ॥
अहियासए सया समिए, फामाइ विन्वरूयाइ ।
अरइ रह अभि-भूय, रीयइ माहणो अरहुवाई ॥

(११)

स जणेहिं तत्थ पुच्छिमु,
एगचरानि एगया राओ ।
अव्याहिए कमाइत्या,
पेहमाणे समाहि अपडिन्ने ॥

(१२)

अयमतरमि को एत्थ ?
अहमसित्ति भिक्खू आहट्ठ ।
अयमुत्तमं से धम्मं,
तुसिणीए कसाइण भाई ॥

(८)

घोर, व्यभिचारी तथा सशस्त्र मामरक्षक भी भगवान् को बहुत तङ्ग करन थे। कभी भगवान् को गाँव में रहने का प्रमत्त आता तो वहाँ भी उन्हें बहुत उपसर्ग सहने पड़ते थे। गाँव में रहने वाले स्त्री और पुरुष प्रायः सभी भगवान् को सताया करते थे।

(९, १०)

सदा समितियों का सम्यक् पालन करने वाले भगवान् ने अनेक प्रकार के ऐहलौकिक तथा पारलौकिक भयङ्कर उपसर्ग सहे। सुगन्ध, दुर्गन्ध, अनेक प्रकार के अनुकूल तथा प्रतिफल शब्द तथा विविध प्रकार के स्पर्श उनके लिए समान थे। रति तथा अरति पर विनय प्राप्त करके आत्मलीन होकर मितभाषी रहते हुए वे समय माग में विचरे।

(११)

भगवान् अकेले विचरते थे। रात में कई बार लोग आकर पूछते—तुम कौन हो ? यहाँ क्यों खड़े हो ? भगवान् उत्तर न देते तो वे क्रोध में आकर विविध प्रकार के कष्ट देते। फिर भी वे शान्तचित्त होकर देखत रहते। मन में किसी प्रकार का विकार न आने देते।

(१२)

कई बार भगवान् जब सूने मकान में ठहरे होते, लोग आकर पूछते—अदर कौन है ? भगवान् उत्तर देते—'मैं एक भिक्षु हूँ।' इस पर वे क्रुद्ध हो उठते और भगवान् को कष्ट देते, किन्तु भगवान् शांत रहते। उस समय मौन रहना ही वे अपना परम धर्म मानते।

(१३, १४, १५)

जसि प्येगे पनेयति,
मिमिरे मारुए पनायते ।

तसि प्येगे अणगारा,
हिमनाये निनायमेमति ॥

सघाडीओ पनेसिस्मामो,
एहा य समादहमाण ।

पिहिया व सम्खामो,
अइ दुक्ख हिमग-सफासा ॥

तसि भगव अपडिन्ने,
अहे पिगडे अदियासए ।

दविए निस्सम्म एगया,
राओ ठाइए भगव समियाए ॥

(१६)

एस विही अणुक्को,
माहणेण मईमया ।

बहुसो अपडिन्नेण,
भगवया एव रीयति ॥

(१३, १४, १५)

ठंडी हवा चलने पर लोग जब कौपने लगते हैं, जिस समय साधु भी वायु रहित स्थान को ढूँढने लगते हैं और भयङ्कर शीत जय दुःख देने लगता है, लोग उममे बचने के लिए रजाई में घुस जाते हैं, लकड़ियों जलात हैं या अपने को ढँके रहते हैं। उस विकट शीत को भी भगवान् न समभावपूर्वक सहा। मन में किसी प्रकार का क्षोभ न आने दिया। सयमी भगवान् गाँव से बाहर सड़े-भडे रात बिता देते। मन को पूर्ण शांत रखते।

(१६)

सतिमान्, आत्मनिष्ठ एव विषयां की लालसा से रहित भगवान् जिस मार्ग पर चले, सभी मुमुक्षु इसी मार्ग पर चलते हैं।



तइयो उद्देसो

~~संस्कृत~~

[परिपह-सहन]



सुरो सगाम-सीसे वा,
सबुडे तत्य से महावीरे ।
पडिसेवमाणे फरुमाड,
अचले भगव रीइत्या ॥

(१)

तण-फासे सीय-फासे य,
 तेउ-फासे य दस-मसगे य ।
 अहियासए सया समिए,
 फामाड विरुवरूवाइ ॥

(२)

अह दुचर-लाण-मचारी—
 वज्ज-भूमि च सुम्भ-भूमि च ।
 पत सिज्ज सेविसु,
 आमणगाणि चैव पताणि ॥

(३)

लाडेसु तस्सुपमग्गा,
 बहवे जणपया लूसिसु ।
 अह लूह-देसिए भत्ते,
 वृन्दुरा तत्थ हिंसिसु निवइसु ॥

(४)

अप्ये जण निपारेड,
 लूमणए सुणए दसमाणे ।
 छुञ्जु कारति आइसु,
 ममण कुन्दुरा दमतु त्ति ॥

(१)

समितियों का पालन करन हुए भगवान शीस, उष्ण, सृण
स्पर्श तथा ढॉस मच्छर आदि के अनुकूल तथा प्रतिकूल स्पर्शों
को बिना किसी राग-द्वेष के महते थे ।

(२)

धूमत हुए भगवान् एक घार † लाढ़ देश में चले गये थे ।
वह देश साधुओं के लिए दुर्गम था । उस देश में ‡ धञ भूमि
और * शुभ्रभूमि नाम के दो विभाग थे । भगवान् दोनों
विभागों में धूम थे । वहाँ उन्हें ऋष्टप्रद मकाना में टहरना पड़ता
था तथा विकट एउ उग्रइ ग्राउइ स्थाना पर बैठना पड़ता था ।

(३)

लाढ़ देश मे भगवान् को अनेक प्रकार के उपसर्ग सहने पड़े ।
उस देश के मनुष्य भगवान् को हैरान करते तथा वहाँ उन्हें खाने
के लिए ऋग-सूग भोजन देते थे । भगवान् को देकर कुत्ते
पन पर भपटते थे और उन्हें काट माते थे ।

(४)

वहाँ ऐसे बहुत थोड़े व्यक्ति थे जो भगवान् को काटते हुए
व नौचते हुए कुत्ता को हटाते । इसन विपरीत वे कुत्तों को छुछ
कार कर भगवान् के पाँछे लगा लते और काटने के लिए प्रेरित
करते ।

† लाढ़ (राढ़)—मुशिनावाद के आस पास का पश्चिमी बङ्गाल ।

‡ धञ भूमि—बङ्गाल का वीर भान प्रदेश जो महावीर के समय में आर्य
कहनाता था ।

* शुभ्र भूमि (शुद्ध भूमि)— त्वीन राइ देश में वह भूमि जहाँ आर्य लोगों
को आबादी अधिक प्रमाण म थी । सम्भवत यह मुशिनावाद के निकट
का भूमिभाग रहा होगा ।

(५)

एलिम्पए जया भुजो,
 बहवे वज्र-भूमि फरुसासी ।
 लट्टि गहाय *नालिय,
 †समणा तत्थ य विहरिंसु ॥

(६)

एव पि तत्थ विहरता,
 पुट्ट-पुट्टा अहेसि सुणिएहिं ।
 सलुचमाणा सुणिएहिं,
 दुच्चराणि तत्थ लाढेहिं ॥

(७)

निहाय Xदड पाणेहिं,
 तं काय वोमरिजमणगारे ।
 अह गामन्टए भगवते,
 अहियासए अभिसमेचा ॥

(८)

नागो सगाम मीसे वा, पारए तत्थ से महावीरे ।
 एव पि तत्थ लाढेहिं, अलद्व-पुव्वो वि एगया गामो ॥

* नालिका—अपने शरीर प्रमाण से चार अगुल बड़ी लम्बी छाठी ।
 † धमण—जैन या बौद्ध साधु ।
 X दड—मन, वचन और शरीर का अशुद्ध (द्विसामय) व्यापार ।

(५)

यहाँ इस प्रकार के ब्रू प्रकृति वाले लोग अधिक थे। ब्रू भूमि के लोग तामसभोनी थे, इसलिए उनका स्वभाव भी वैसा ही बन गया था। यहाँ दूमरे साधु लाठी या नालिका लेकर घूमते थे।

(६)

साधनों से युक्त होने पर भी उन्हें कुत्ते काट खाते थे और हैरान करते थे। लाढ़ देश में घूमना अत्यन्त दुष्कर था।

(७)

अनगार भगवान् महावीर उन प्राणियों पर किसी प्रकार का दुर्भाव नहीं लाते थे। उन्हें अपने शरीर पर भी कोई भय न था। आत्म विकास का साधन मानकर न प्राम-सम्यग्धी सभी कष्टों को सहते थे।

(८)

जिस प्रकार सप्राम महावीर रू के प्रहारों की परवाह न करता हुआ आगे बढ़ता जाता है उसी प्रकार भगवान् भी लाढ़ देश में उपसर्गों की परवाह न कर विचरते रहे। कभी कभी तो उन्हें रहने के लिए गाँव भी न मिलता था और जगल में ही रह जाना पड़ता था।

(६)

उवसरुमत-मपडिन्न-

गामतियम्मि अप्पत्तं ।

पडिनिक्खमित्तु लूमिसु,

एयञ्चो पर पलेहिच्चि ॥

(१०)

हय पुव्वो तत्थ दडेण,

अदुवा मुट्ठिणा अदु कुन्तफलेण ।

अदु लेलुणा कणालेण,

हता हता चहवे कदिंसु ॥

(११)

मसाणि छिन्न-पुच्चाणि,

उट्टमिया एया काय ।

*परीसहाइ लुञ्चिसु,

अदुवा पसुणा उअकरिंसु ॥

(१२)

उच्चालइय निहसिंसु, अदुवा आसणाञ्चो खलइसु ।

वोसइक्काय-पणयामी, दुक्ख-सहे भगव अपडिन्ने ॥

*परीसहा—साउ-जीवन में आने वाले कष्ट जिन्हें मुनि को शान्तिपूर्वक-से
चाहिए ।

(६)

भगवान् जब किसी गाँव में जाते तो पाम पहुँचने से पहले ही गाँव के लोग बाहर निकल कर उन्हें मारने पीटने लगते और घग्ने गाँव में चले जाने के लिए कहने ।

(१०)

वे लोग भगवान् को दण्ड, मुष्टि, भाला, पथर तथा ठीकरों से मारते थे और खुरा होकर चिड़ाने थे ।

(११)

वहाँ लोगों ने भगवान् के शरीर को नींच डाला । उनके शरीर पर विविध प्रकार के प्रहार किये । उनके लिए भयङ्कर तरीपह उपस्थित किये और उन पर घूल तक फेंकी ।

(१२)

उन लोगों ने भगवान् को ऊपर उद्दाल उद्दाल कर पटका । आसन पर बैठे हुए को धकेल दिया । फिर भी शरीर के ममन्व से रहित होकर भगवान् बिना किसी इच्छा के संयम मार्ग में स्थिर रहते हुए मभी दुःख सहते रहे ।

(१३)

द्युरो सगाम सीसे वा,
 सद्युडे तत्थ से महानीरे ।
 पडिसेवमाणे फरुसाइ,
 अचले भगन रीइत्था ॥

(१४)

एस विही अणुक्तो,
 माहणेण मईमया ।
 बहुसो अपडिन्नेण,
 भगनया एव रीयति ॥

(१३)

जिस प्रकार कवच पहने हुए शूरवीर का शरीर युद्ध में अक्षत रहता है, उसी प्रकार अचेल भगवान् महावीर ने अत्यन्त कठोर कष्टों को सहते हुए भी अपने सज्जम को अक्षत रक्खा ।

(१४)

भविष्यन्, आत्मनिष्ठ षड्विध विषयों की लालसा से रहित भगवान् महावीर जिस मार्ग पर चले थे, सभी मुमुक्षु इसी मार्ग पर चलते हैं ।



चउत्थो उद्देसो

चउत्थो उद्देसो

[तपश्चर्या]



अरुमाई विगय-गेही य,
सद-रुंसे सु अमुच्छिए भाइ ।
छउमत्थोवि परकममाणो,
न पमाय सइपि कुञ्चित्था ॥

(१)

* श्रीमोयरिय चाण्ड,
 अपुडे वि भगन रोगेहिं ।
 पुडे ना अपुडे वा,
 नो से साहजड तेइच्छ ॥

(२)

ससोहण च वमण च,
 गायन्भगण च मिणाण च ।
 सनाहण च न से रूपे,
 दत्त-पक्कालण च परिभाए ॥

(३)

विरए × गाम-धम्मेहिं, रीयइ माहणो अवहुच
 सिसिरमि एगया भगन, छायाण भाइ आसी

(४)

आयानड य गिम्हाण, अच्छइ + उक्कुइए अभि
 अदू जावइत्थ लूहेण, ओयण-मपु-कुम्मा

* अवमोदय — उत्तारणी अन्वयाहार ।

× प्राप्त र्म — प्राप्त — र्मिण्य (मेत नेत्र प्राण जिह्वा शरीर)

धम — इन्द्रियों क विषय (शब्द रूप रस, रस)

+ उक्कुइक — गोदीदामन ।

† बेरी को कुटी ।

‡ अन्वयाण — अन्वय विरोध ।

(१)

रोग आदि विशेष कारण न होने पर भी भगवान् उजोदरी अर्थात् अल्पाहार करते थे। रुग्ण हों या नीरोग, उंहाने कभी चिकित्सा करना नहीं चाहा।

(२)

भगवान् ने कभी विरचन अथवा घमन की औपधि का संवन नहीं किया। उंहोंने न कभी मालिश कराई और न कभी स्नान ही किया। पगर्चपी तथा दन्तप्रज्ञालन से भी वे दूर रहे।

(३)

इन्द्रिय भोगों से विरक्त होकर भगवान् सदा आत्म चिंतन में लीन रहते थे। वे बहुत कम थोलते थे। शीतकाल में भी वे झ्यावा में ध्यान लगाया करते थे।

(४)

ग्रीष्म ऋतु में भगवान् आतापना लेते थे। सूर्य के सन्मुख उल्टुटुक आसन जमाकर बैठने थे। शरीर निर्वाह के लिए रुखे चावल, बेरों की घृष्टी और उड़द काम में लाते थे।

(५, ६, ७)

एयाणि त्रिणि पडिमेने, अट्ट मामे अ जात्रय भगव ।
 अपिडित्थ एगया भगव, अट्टमाम अट्टुमा माम पि ॥
 अपि साहिए दुने मामे, छप्पि मासे अट्टुवा निहरित्था ।
 राओनराय अपडिन्ने, अन्नगिलायमेगया भुञ्जे ॥
 * छट्ठेण एगया भुञ्जे, अट्टुमा अट्टुमेण दसमेण ।
 दुरालसमेण एगया, भुञ्जे पेहमाणे समाहिं अपडिन्ने ॥

(८)

शुचा ए से महारीरे,
 नो पि य पापग सयमहासी ।
 अन्नेहिं न ए सगित्था,
 कीरतपि नाणुजाणित्था ॥

* पष्ठमक — छ समय के लिए प्राहार का त्याग । साधारणतया मनुष्य दिन में दो बार भोजन करता है । पष्ठमक में पहले दिन एक बार भोजन किया जाता है । दूसरे और तीसरे दिन सर्वथा निराहार रखा जाता है । चौथे दिन फिर एक बार भोजन किया जाता है । इस तरह पष्ठमक का अर्थ हुआ दो दिन का उपवास और पहले और चौथे दिन का एकाशन । शास्त्रों में सभी प्रकार के उपवासों का यही क्रम रक्ता गया है ।

(५, ६, ७)

भगवान् ने आठ महीने इन्हीं तीन वस्तुओं पर निर्वाह किया। कई बार उन्होंने पन्द्रह दिन, एक महीना, दो महीने तथा छह महीने तक के लम्बे उपवास किये। दो दिन, तीन दिन, चार दिन तथा पाँच दिन आदि के उपवास से उनके प्रायः पलने ही रहते थे। पारने के दिन भी वे एक बार ही भोजन करते थे। वे मन में किसी प्रकार की म्लानि न आने देते और न किसी प्रकार की कामना को ही स्थान देते। इस प्रकार के कठोर व्रत लेकर वे विचरते रहे।

(८)

भगवान् ने हेय और उपादेय के स्वरूप को जानकर न तो कभी स्वयं पाप किया, न किसी को करने के लिए ब्रह्मा और न करने वाले को अच्छा ही ममता।

(६)

गाम पवित्रे नगर वा,
 घासमेसे कड परहार ।
 सुविमुद्धमेनिया मगव,
 आयत जोगराण सेविघा ॥

(१०, ११, १२)

अदु वायमा दिगिद्धन्ता,
 जे अत्रे रमेमियो सत्ता ।
 घासमेराण चिद्धति,
 सयय निवडए य पेहाए ॥

अदुना माहण च ममण वा,
 * गामपिंडोलग च अतिहिं वा ।
 मोनाग-भूसियारिं वा,
 बुन्दुर वावि निद्धिय पुरओ ॥

वित्तिच्छेय वज्जतो,
 तेसिमप्यत्तिय परिहरतो ।
 मद परकमे मगव,
 अहिंसमाणो घासमेसित्या ॥

* गाम पिण्डोलक—भित्तमगा ।

(६)

भगवान् ग्राम में जाते या शहर में, सप्ता निर्नाप आहार की व्यवस्था करते थे। वे अपने निमित्त से घन हुए आहार को कभी नहीं लते थे। शुद्ध आहार पानी का भी वे मन, प्रचन, कायरूप लाना योगों को बराबर रखकर सेवन करते थे।

(१०, ११, १२)

भिक्षा के लिए घूमते समय भगवान् यदि देखते कि भूख लीए तथा दूसरे प्राणी भोजन के लिए इकट्ठे हो रहे हैं अथवा कोई ब्राह्मण, श्रमण भिक्खु, अतिथि, घायल, कुत्ता, बिल्ली आदि गड़ हैं तो वे धीरे धीरे दूसरी ओर चल जाते। उनकी आजीविका में बाधा नहीं डालना और न उन्हें किसी प्रकार अप्रसन्न ही करते। इस प्रकार आहार प्राप्ति के समय भी वे किसी को बुरा या बाधा नहीं पहुँचाने थे और अहिंसा का पालन करते थे।

(१३)

अग्नि स्रज्य वा सुफ वा, मीय पिंड पुराण-वृम्भाम ।
अद् बुक्कम पुलाग वा, लद्वे पिंटे थलद्वे दविण ॥

(१४)

अग्नि भाइ मे महार्वीरे, आमणत्थे *अनुम्भुण भाण ।
उड्ढ अहे तिरिय च, पेहमाणे समाहि मपडिन्ने ॥

(१५)

अरुसाई निगयगेही य, मदरूपेसु अमुच्छिण भाइ ।
*छउमत्थो वि परक्कममाणो, न पमाय सड पि कुत्थित्था ॥

(१६)

सयमेव अभि ममागम्म, आयतजोगमाय-सोहीण ।
अभिनिव्णुडे अमाइल्ले, आवरुह भगव समियासी ॥

(१७)

एव विही अणुक्तो,
माहणेण मईमया ।
बहुसो अपडिन्नेण,
भगवया एव रीयति ॥

(१३)

भगवान् का भिन्ना में आद्र, सूखा, चासी, ठंडा, पुराना चाहे कैसा भी भोजन मिल जाता, वे उमी पर सत्तोप कर लेते और न भिन्न पर भी उन्हें कोई दुःख न होता था ।

(१४)

त्रिपय आमन लगाकर ध्यान में बैठे हुए भगवान् महावीर मग पर किसी प्रकार का त्रिभार न आने देते । विषयभोगों की लालमा से रहित होकर उपर, नीचे तथा इधर उधर लोक के स्वभाव को जानत हुए व समाधि में लीन रहते थे ।

(१५)

भगवान् कषाय रहित तथा रागशून्य थे । शब्द तथा रूप आदि में आमत्त नहीं होते थे । छद्मस्थ अवस्था में भी उन्होंने कभी प्रमाद नहीं किया ।

(१६)

भगवान् न स्वयमेव ममार का स्वरूप समझा । आत्म शुद्धि के साथ अपने योगा को पत्रिष घनाया । वे जीवनभर माया रहित और शांत बने रहे ।

(१७)

मतिमान्, आत्मनिष्ठ एवं त्रिषयों की लालमा से रहित भगवान् महावीर निम्न मार्ग पर चले थे, सभी मुमुक्षु इमी मार्ग पर चलते हैं ।



